महर्षि दुर्वासा
और
श्रीदुर्वासा–आश्रम

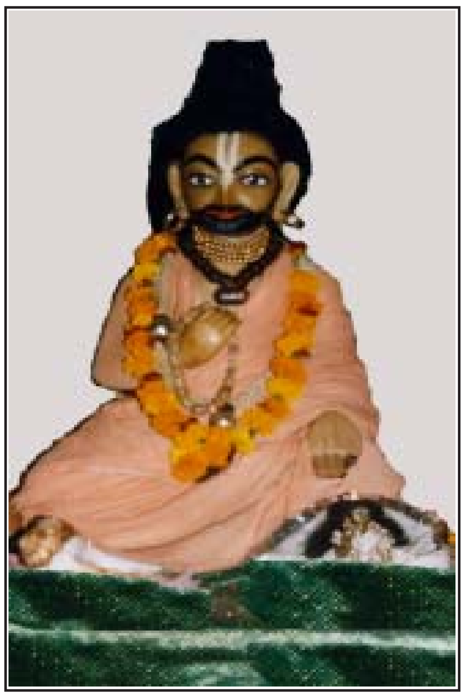

लेखक
त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्‌भक्तिवेदान्त
नारायण महाराज

गौड़ीय वेदान्त समिति (रजि.)
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी 'आचार्य केसरी' की उपदेशावली

१—श्रीगुरुपादपद्मकी विश्रम्भ सेवा द्वारा ही भगवद्भक्ति प्राप्त होती है।

२—श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी निष्कपट सेवा ही गुरु-सेवा है।

३—कीर्त्तनाख्या भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण भक्ति-अङ्ग है।

४—कीर्त्तनके माध्यमसे ही भक्तिके दूसरे अङ्ग साधित होते है।

५—कुसङ्गका त्याग ही निर्जन है अर्थात् साधु-वैष्णव-सङ्गमें भजन ही निर्जन-भजनको तात्पर्य है।

६—सदा-सर्वदा हरि-कथाका प्रचार ही हरि-कीर्त्तन है।

७—सदा-सर्वदा हरिकथा कहना या श्रीहरि-सेवामय कथामें निमग्न रहना ही मौनावस्था है।

८—श्रीरूपानुगत्यमें गौर-भजन ही श्रीराधाकृष्णका विप्रलम्भ भजन है।

९—सद्गुरुका चरणाश्रय करके हरि सेवा करनी चाहिए।

१०—तन-मन-वचन द्वारा किसीको उद्वेग नहीं देना चाहिए।

११—सत्पथमें रहकर अर्थोपार्जन द्वारा जीविका निर्वाह करना चाहिए।

१२—श्रीभगवान् एक है, अनेक नहीं है; यह सदैव स्मरण रखो।

। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ।

महर्षि दुर्वासा
और
श्रीदुर्वासा-आश्रम

लेखक
त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त
नारायण महाराज

गौड़ीय वेदान्त समिति (रजि.)
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा—२८१००१

❑ प्रकाशक—

कालाचाँद ब्रह्मचारी

श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रम

यमुनापार, मथुरा (उ॰ प्र॰)

❑ प्रथम संस्करण—

श्रीकृष्णकी हेमन्तिकी रासयात्रा

कार्तिक शुक्ल १५, संवत्—२०५३, २५ नवम्बर १९९६

❑ प्राप्तिस्थान—

१. श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, तेघरीपाड़ा, नवद्वीप, नदिया (प०बं०)
२. श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ०प्र०) दूरभाष ४०९४५३
३. श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा, हुगली (प०बं०)
४. श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावन (उ०प्र०) दूरभाष ४४३२७०
५. श्रीगोपीनाथजी गौड़ीय मठ, राणापत घाट, वृन्दावन (उ०प्र०)
६. श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रम, यमुनापार, मथुरा (उ०प्र०)
७. श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ, कनखल, हरिद्वार (उ०प्र०)
८. श्रीनीलाचल गौड़ीय मठ, स्वर्गद्वार, पुरी (उड़ीसा)
९. श्रीविनोदबिहारी गौड़ीय मठ, २८, हालदार बागान लेन, कलकत्ता-४
१०. श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ, गोलोकगंज, ग्वालपाड़ा, (आसाम)
११. श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ, अरविन्द लेन, जिला-कूचबिहार
१२. श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचार केन्द्र, रान्दियाहाट, बालेश्वर (उड़ीसा)
१३. श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ, शिलिगुड़ी, दार्जिलिङ्ग (प०बं०)
१४. श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ, आशुतियाबाड़ मेदिनीपुर (प०बं०)
१५. श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठ, सिधाबाड़ी, वर्द्धमान (प०बं०)

❑ मुद्रक

अनुभा प्रिन्टर्स, मथुरा ✆ ४०३२५७

महर्षि दुर्वासा और श्रीदुर्वासा—आश्रम

व्रजमण्डलके अन्तर्गत प्रमुख बारह वन हैं। इन बारहों वनोंमें से प्रत्येक वनके अन्तर्गत बहुतसे उपवन और उपवनोंके अन्तर्गत बहुतसे शाखा वन हैं। इन द्वादश वनोंमें से यमुनाके पूरबमें भद्रवन, भाण्डीरवन, बिल्ववन, महावन तथा लौहवन और पश्चिममें मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, काम्यवन, खदीरवन तथा वृन्दावन हैं। इनमें से लौहवनके अन्तर्गत यमुनाके किनारे मथुरासे ठीक यमुनाके उसपार दो फर्लांग दूर दुर्वासाजीका अत्यन्त प्राचीन आश्रम है।

महर्षि दुर्वासा सत्य, त्रेता एवं द्वापर—तीनों युगोंके एक प्रसिद्ध सिद्ध योगी एवं महर्षि हैं। इनकी मृत्युका कहीं भी उल्लेख नहीं है। आज भी वे छिपे हुए वेषमें कहीं-न-कहीं अवश्य वर्तमान होंगे। वे बड़े अटपटे ऋषि हैं। वे कब और क्या करना चाहते हैं, यह समझना बड़ा ही कठिन है। इसलिए वे सब समय दुर्बोध हैं। वे महादेव शंकरके अंशसे आविर्भूत हुए हैं। कभी-कभी उनमें अकारण ही भयंकर क्रोध भी देखा जाता है। वे सब प्रकारके लौकिक वरदान देनेमें समर्थ हैं।

सतयुगमें महर्षि दुर्वासा

उनका यह आश्रम अर्थात् दुर्वासा ऋषि आश्रम भी बहुत ही प्राचीन स्थल है। यह महर्षि दुर्वासाकी सिद्ध तपस्या स्थली है एवं तीनों युगोंका प्रसिद्ध आश्रम है। भारतके समस्त भागोंसे लोग इस आश्रमका दर्शन करने और तरह-तरहकी लौकिक कामनाओंकी पूर्ति करनेके लिए आते हैं।

महर्षि अत्रिजी, सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके मानस-पुत्र थे। वे प्रलयकर्ता ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये त्रिदेव वर देनेके लिए उपस्थित हुए। इन तीनोंका दर्शन पाकर अत्रिजी कृतकृत्य हो गये। वे प्रेमसे गद्‌गद् होकर उनकी स्तुति करने लगे। उन तीनों ईश्वरोंने प्रसन्न होकर उनसे वर माँगनेके लिए कहा। अत्रिजीने पत्नी अनुसूयाजीसे परामर्श कर यह वर माँगा कि आप तीनों हमारे पुत्र होवें। 'ऐसा ही हो'—यह कहकर वे अपने अपने लोकमें प्रस्थान किये।

कुछ दिनोंके बाद देवर्षि नारद वीणापर भगवान्‌का गुणानुवाद करते हुए लक्ष्मी, सरस्वती तथा उमासे मिले। उन्होंने प्रसंगवशतः अनुसूयाजीके पातिव्रत्य धर्मका बड़ा ही बखान किया। उन्होंने कहा कि इस समय अत्रिजीकी पत्नी अनुसूयाजी विश्वभरमें अपने पातिव्रत्य धर्मके लिए सबसे प्रसिद्ध नारी हैं। उनसे बढ़कर इस त्रिलोकीमें कोई भी पतिव्रता नारी नहीं हैं।

देवर्षिकी बात सुनकर उन तीनों देवियोंका मुख कुछ उतर-सा गया। उन्हें यह अभिमान था कि उनसे बढ़कर कोई भी इस त्रिलोकीमें पतिव्रता नारी नहीं है। वे इस बातको सह न सकीं। उन्होंने अपने अपने पतियों—श्रीविष्णु, श्रीब्रह्मा एवं श्रीमहेशसे अलग-अलग आग्रह किया कि वे अनुसूयाजीके पातिव्रत्य धर्मकी कठिन परीक्षा लें, जिससे कि वे उस कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण न हो सकें। किन्तु, तीनों देवोंने अपनी अपनी पत्नियोंको यह समझाया कि अनुसूयाजी परम तपस्विनी, पतिव्रता एवं परम भगवद्भक्त हैं। ऐसा करनेसे लेने-का-देना पड़ सकता है। फिर भी वे तीनों देवियाँ पुनः पुनः अनुसूयाजीकी परीक्षा लेनेके लिए हठ करने लगीं।

अपनी अपनी पत्नियोंके पुनः पुनः अनुरोध किये जाने पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों ही श्रीअत्रि और अनुसूयाजीके चित्रकूट-स्थित आश्रममें उपस्थित हुए। उस समय तपस्विनी अनुसूयाजी आश्रममें अकेली थीं। पास ही अत्रिजी एक पर्वतकी कन्दरामें भगवत्-आराधनामें मग्न थे। घनघोर जंगलके भीतर पर्वत श्रेणियोंके बीचमें स्थित अनुसूयाजीके आश्रममें इन तीनोंने प्रवेश किया। अनुसूयाजी उन्हें देखकर उठ खड़ी हुईं तथा हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करते हुए उनसे निवेदन किया कि आप अतिथियोंकी मैं क्या सेवा कर सकती हूँ? आप लोग हमारे पूज्य अतिथि हैं। ऐसा कहकर वे अपने हाथोंमें जल एवं कुछ फल-फूल लेकर उनके सामने उपस्थित हुईं। किन्तु, वे तीनों तो साधारण अतिथि थे नहीं। उन्होंने कहा—"यदि आप बिल्कुल निर्वस्त्र होकर हमें भिक्षा दें, तो हम उसे ग्रहण कर सकते हैं, अन्यथा हमलोग अतृप्त होकर चले जायेंगे।

उनकी यह अटपटी बात सुनकर अनुसूयाजीने कुछ विचार किया और उनसे कुछ देर तक वहीं प्रतीक्षा करनेके लिए कहकर वे वहाँसे उठकर अपने पति अत्रिजीके पास चली आईं और तीनों अतिथियोंकी अत्यन्त अद्‌भुत भिक्षा ग्रहण करनेकी बात बताई। अत्रिजीने ध्यान लगाया और देखा कि ये तीनों और कोई नहीं बल्कि स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। उन्होंने अपनी पत्नीको निर्देश दिया कि ये तीनों अतिथि कोई साधारण अतिथि नहीं हैं, स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। तुम त्रिदेवोंके इच्छानुसार उनका सत्कार करो, इसमें कुछ भी हानि नहीं होगी। वे वहाँसे अपने आश्रममें लौट आईं और त्रिदेवोंसे कहा कि मैं आप अतिथियोंके इच्छानुसार सेवा करनेके लिए सहमत हूँ, किन्तु

आपलोग भी मेरी इच्छानुसार नवजात शिशु बनकर मेरी गोदमें आ जाएँ। साथ-ही-साथ वे तीनों बच्चे होकर उनकी गोदमें खेलने लगे। वे उन तीनों बच्चोंका बड़े प्यारसे पालन-पोषण करने लगीं। उन तीनों शिशुओंका नामकरण भी किया गया—चन्द्रमा, दत्तात्रेय एवं दुर्वासा। ब्रह्माजी चन्द्रके रूपमें, विष्णु दत्तात्रेयके रूपमें और महेश दुर्वासाके रूपमें अवतरित हुए थे।

कुछ दिनोंके बाद लक्ष्मी, सरस्वती और उमा—ये तीनों देवियाँ अपने पतियोंके न लौटनेके कारण बड़ी चिन्तित हुईं। उन्हें देवर्षि नारदसे पता चला कि उन तीनोंके पति बच्चे बनकर अनुसूयाजीके गोदमें खेल रहे हैं, ऐसा जानकर वे तीनों एक साथ साधारण वेषमें अनुसूयाजीके आश्रममें उपस्थित हुईं। अनुसूयाजीने उनका आदर-सत्कार करनेके पश्चात पूछा कि आप कौन हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि हम आपकी बहुएँ हैं। अनुसूयाजीने पूछा—"आप कैसे मेरी बहुएँ हुईं?" उन्होंने कुछ सकुचाते हुए उत्तर दिया—"आपके गोदमें खेल रहे ये तीनों बच्चे और कोई नहीं हमारे पति हैं। क्योंकि हमारे पति आपके बेटे हैं, अतः हम आपकी बहुएँ हुईं।" अनुसूयाजीने मुस्कुराते हुए उनसे पूछा कि आपलोग क्या चाहती हैं। देवियों ने उत्तर दिया—"हम अपने अपने पतियोंको पुनः पाना चाहती हैं? आप कृपाकर इन्हें उनके पूर्व रूपमें हमें लौटा दें, जिससे हम अपने पतियोंकी सेवा कर सकें।" ऐसा सुनकर अनुसूयाजीने कहा कि इस वर्तमान स्वरूपमें वे मेरे पुत्रोंके रूपमें मेरे पास ही रहेंगे, साथ ही वे अपने पूर्व स्वरूपमें अवस्थित होकर आप तीनोंके साथ अपने अपने धाममें विराजमान भी रहेंगे। यह कथा सतयुगके प्रारम्भकी है। पुराणों और महाभारतमें इसका विशद वर्णन है।

सतयुगमें महर्षि दुर्वासा

दुर्वासाजी कुछ बड़े हुए। माता-पितासे आदेश लेकर वे अन्न-जलका त्यागकर कठोर तपस्या करने लगे। विशेषतः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणादि अष्टांगयोगका अवलम्बनकर वे ऐसी सिद्ध अवस्थामें पहुँचे कि उनको बहुत-सी योग सिद्धियाँ प्राप्त हो गईं। अब वे सिद्ध योगीके रूपमें विश्वमें विख्यात हो गए। जिसको जो कुछ कहते, वही हो जाता। इनके हजारों शिष्य हुए।

तत्पश्चात् यमुनाके किनारे इसी स्थलपर उन्होंने एक आश्रमका निर्माण किया और यहींपर रहकर आवश्यकताके अनुसार बीच-बीचमें इच्छानुसार भ्रमण भी करते थे। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षिगण उनसे मिलनेके लिए यहाँ आते थे। आश्रम भी यमुनाके किनारे सुंदर उपवनमें बड़ा ही मनोहर था, जिसमें कोयलें कुहकती थीं, मयूर नृत्य करते थे, हिरण-हिरणियाँ इधर-उधर फुदकते थे। तरह-तरहके पशु-पक्षी आदि इसमें स्वच्छन्दरूपसे विहार करते थे। पास ही कमलके फूलोंसे भरी हुई यमुनाजी कल-कल शब्द करती हुई प्रवाहित होती थीं। इस प्रकार इनका आश्रम बहुत ही सुहावना एवं मनोहर जान पड़ता था।

दुर्वासा आश्रमसे निकट ही यमुनाके उस पारमें दूसरे किनारेपर महाराज अम्बरीषका एक बहुत ही सुंदर राजभवन था। महाराज अम्बरीष अपनी सुदूर राजधानीसे यहाँ निवासकर साधन-भजन करते थे। एक समयकी बात है, वे निर्जला उपवास रहकर तथा रात्रि जागरणकर द्वादशीव्रत पालन किये हुए थे। दूसरे दिन प्रातः कालमें अपनी नित्य क्रिया, स्नान, आह्निक तथा अर्चन-पूजनसे निवृत्त

होकर उपस्थित वैष्णव, ब्राह्मण एवं अतिथियोंका अभ्यागत आदि कर तथा भगवत्-प्रसाद द्वारा प्रसन्नकर स्वयं महाद्वादशीका पारण करना चाहते थे। सूर्योदयके बाद दो घड़ीके भीतर ही पारणका समय था। समय बहुत ही अल्प था, इतनेमें ही महर्षि दुर्वासा वहाँ उपस्थित हुए। महर्षिको देखकर महाराज अम्बरीष बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"हे महर्षे! आज हमारा परम सौभाग्य है कि आप जैसे अतिथिकी सेवा करनेका सुयोग प्राप्त हुआ है। ठाकुरजीका महाप्रसाद आपके सामने प्रस्तुत है, कृपया ग्रहण करें।" दुर्वासाजी बड़े अटपटे ऋषि थे, उनका स्वभाव निराला था। वे कब क्या करना चाहते हैं, इसको समझना बड़ा ही कठिन था। उन्होंने कहा कि मैंने अभी तक स्नानादि नित्य क्रियाएँ समाप्त नहीं की हैं। मैं यमुनामें स्नान आदि कर अभी लौटता हूँ। ऐसा कहकर वे युमनाके तटकी ओर चले गये।

पारणका समय समाप्त होने जा रहा था। ऋषिने देर लगा दी, अभी तक लौटे नहीं। महाराज अम्बरीष उभय संकटमें पड़ गये। यदि निमंत्रित अतिथिको बिना खिलाये द्वादशीका पारण करते हैं, तो ब्राह्मण अतिथिकी अवज्ञा होती है और ऋषि असंतुष्ट होकर अभिषाप दे सकते हैं। इस तरह लौकिक सदाचारका उल्लंघन होता है। किन्तु, दूसरी ओर द्वादशीका उचित समयपर पारण नहीं करनेसे पारमार्थिक भक्तिकी हानि होती है। उन्होंने धर्मज्ञ ब्राह्मणोंसे परामर्शकर द्वादशीके पारणके निर्दिष्ट समयके भीतर एक बूँद श्रीचरणामृत ग्रहण कर लिया, क्योंकि जो लोग व्रतके दिन निर्जला उपवास करते हैं, उनके लिए दूसरे दिन चरणामृत आदि जलके द्वारा पारणकी विधि शास्त्रोंमें है। किन्तु, जो लोग व्रतके दिन अनुकल्पके रूपमें फल आदि कुछ ग्रहण करते हैं,

उनके लिए भगवानके अन्न प्रसादके द्वारा ही पारणकी विधि है। किसी भी रूपमें पारमार्थिक भक्तिका निरादर नहीं होना चाहिए, अन्यथा भक्ति नष्ट हो जाती है। इस प्रकार महाराज अम्बरीषने परमार्थकी महत्ताको श्रेष्ठ समझकर चरणामृतसे ही पारण किया। इस प्रकार उनका द्वादशीका पारण हुआ भी और नहीं भी हुआ। लौकिक धर्मको छोड़कर परमार्थकी रक्षा करना ही उचित है।

उनका पारण करना ही था कि ऋषि वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने योगबलसे यह जान लिया कि महाराजने द्वादशीका पारण कर लिया है। वे क्रोधसे काँपने लगे। उन्होंने कहा कि तुम बहुत ही पाखण्डी हो, तुमने मुझे निमन्त्रण देकर मुझे भोजनके लिए बुलाया और मुझे खिलानेसे पहले स्वयं ही भोजन कर लिया। मैं तुम्हें अभी इसका दण्ड देता हूँ। ऐसा कहकर उन्होंने अपनी जटाका कुछ अंश नोचकर जमीन पर पटक दिया। उस जटासे एक जलती हुई कृत्या राक्षसी प्रकट हुई और महाराज अम्बरीषको जलानेके लिए बड़ी तेजीसे अग्रसर हुई। महाराज अम्बरीष हाथ जोड़े हुए खड़े थे, परन्तु वे संपूर्णरूपसे निर्भिक थे क्योंकि वे अनन्यरूपसे भगवानके शरणागत थे। ठीक इसी समय शरणागत वत्सल भगवानके महाप्रभावशाली चक्र सुदर्शन भक्तकी रक्षाके लिए क्षण भरमें प्रकट हो गये। उन्होंने कृत्या राक्षसीको जलाकर भस्म कर दिया और वे दुर्वासाजीकी ओर अग्रसर हुए। दुर्वासाजी बड़े ही भयभीत हो गये, वे अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए बहुत तेजीसे भागे। वे वहाँसे पाताल और स्वर्गादि चौदह लोकोंको पारकर शिवलोकमें पहुँचे और शंकरजीसे अपनी रक्षाकी प्रार्थना करने लगे। सुदर्शन चक्र बड़ी तेजीसे उनका पीछा कर रहे थे। उनको देखते ही शंकरजीने उनसे कहा कि तुम बड़े अटपटे हो। भगवानके भक्तोंसे भी उलझ

जाते हो, तुम उनकी महिमा नहीं जानते। भगवद्भक्तोंके चरणोंमें अपराध करनेवालोंकी मैं कोई भी सहायता नहीं कर सकता। तुम सीधे उन भगवान विष्णुके पास जाओ, जिनका यह चक्र है वे ही तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं, दूसरे नहीं।

वे उलटे पैर विष्णुलोकमें भगवान विष्णुके श्रीचरणोंमें उपस्थित हुए और अपने प्राणकी रक्षाकी प्रार्थना करने लगे—"प्रभो! मेरी रक्षा कीजिए, मैं बड़ा ही आर्त हूँ। आपके अतिरिक्त कोई भी इस जगतमें मेरी रक्षा नहीं कर सकता। मैं आपका शरणाणत हूँ। आप शरणागतवत्सल हैं, अतः शरणागतोंकी रक्षा करना ही आपका स्वभाव है।" भगवान विष्णुने कहा—"मैं भक्त-विद्वेषियोंकी रक्षा नहीं कर सकता। मैं भक्तोंका हृदय हूँ और भक्त मेरे हृदय हैं। मैं भक्तोंको कदापि नहीं छोड़ सकता, मैं उनके पराधीन हूँ। मेरे जिन भक्तके चरणोंमें आपने अपराध किया है, वे भक्त ही आपको क्षमा कर सकते हैं, मैं नहीं कर सकता। अतः यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं, तो भक्त अम्बरीषके निकट ही क्षमा-प्रार्थना करें।"

यह सुनकर महर्षि दुर्वासा बड़े निराश हुए। कोई अन्य उपाय न देखकर उन्होंने महाराज अम्बरीषके निकट जाना ही निश्चित किया। जैसे ही वे महाराज अम्बरीषके निकट उपस्थित हुए, महाराज अम्बरीषने बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। किन्तु, दुर्वासाजी उनके चरणोंमें गिर पड़े और अपने कुकृत्यके लिए उनसे क्षमा माँगते हुए अपने प्राणोंकी रक्षाकी प्रार्थना करने लगे। महाराज अम्बरीषने चक्र सुदर्शनकी स्तुतिकर उन्हें शान्त किया। दुर्वासाजी भक्तिकी ऐसी अद्‌भुत महिमा देखकर स्तब्ध रह गये और बोले—"धन्य है! आज मैंने भगवान् अनन्तदेवके भक्तोंका महत्व देखा;

राजन! मैंने आपके प्रति अपराध किया, तथापि आप मेरे लिए मंगलकी ही कामना कर रहे हैं। जिन्होंने भक्त-वत्सल भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंको दृढ़ प्रेमभावसे पकड़ लिया है, उन साधुपुरुषोंके लिए कौन-सा कार्य कठिन है? जिनका हृदय इतना उदार है, वे महात्मा भला किस वस्तुका परित्याग नहीं कर सकते, जिनके मंगलमय वाणीके श्रवणमात्रसे जीवका हृदय निर्मल हो जाता है, उन तीर्थपाद श्रीभगवानके चरणकमलोंके दासोंके लिए कौन-सा कर्तव्य शेष रह जाता है अर्थात् कुछ भी शेष नहीं रहता। अहो! आपने मेरे उपर महान अनुग्रह किया है। आपने मेरे अपराधोंको भुलाकर मेरे प्राणोंकी रक्षा की है।"

जबसे दुर्वासाजी अपने प्राणोंको बचानेके लिए इधर-उधर भाग रहे थे, तबसे अब तक महाराज अम्बरीषने भोजन नहीं किया था। वे उनके लौटनेकी बाट जोह रहे थे। उन्होंने दुर्वासाजीके चरण पकड़ लिए और उन्हें बड़े प्रेमसे भोजन कराया। दुर्वासाजी भोजन करके तृप्त हुए और बड़े आदरपूर्वक उन्होंने कहा—"राजन! आप भी भोजन करें।"

दुर्वासाजीने संतुष्ट होकर महाराज अम्बरीषके गुणोंकी प्रशंसा की और अपने आश्रमको लौट आए। अम्बरीष महाराजके संसर्गसे महर्षि दुर्वासाका चरित्र बदल गया। अब वे ब्रह्मज्ञान और अष्टांग-योग आदिकी अपेक्षा शुद्ध भक्तिकी महिमाकी अधिकता उपलब्धिकर भक्ति मार्गकी तरफ झुक गये।

त्रेतायुगमें महर्षि दुर्वासा

उक्त घटनाके बाद दुर्वासाजी व्रजमण्डलमें स्थित इस आश्रमपर अधिक निवास करने लगे। वहींसे वे आवश्यकताके अनुसार विश्व एवं अन्यान्य लोकोंमें भ्रमण करते रहते थे। त्रेतायुगमें भी महर्षि

दुर्वासाकी बहुत सी कथाओंका विभिन्न पुराणों एवं महाभारतमें उल्लेख मिलता है।

श्रीरामचन्द्रजीने इस धराधामपर अवतरित होकर ग्यारह हज़ार वर्ष तक लीलाएँ की। अंतमें ब्रह्माजीकी इच्छासे कालपुरुष एक महर्षिका रूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप आया। उसने श्रीरामचन्द्रजीसे एकान्त स्थानमें कुछ बातें करनेके लिए निवेदन किया, जिससे और कोई भी व्यक्ति उसे न सुन सके। श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणकी ओर मुड़कर कहा—"लक्ष्मण! तुम स्वयं राजभवनके द्वारपर खड़े होकर किसीको भी भीतर प्रवेश न करने देना। यदि किसी प्रकार कोई व्यक्ति हम दोनोंके वार्तालापके बीच उपस्थित हुआ, तो उसे मैं प्राणदण्ड दूँगा।" लक्ष्मणजी राजभवनके द्वारपर उपस्थित हुए। इधर कालपुरुष और श्रीरामचन्द्रजीमें वार्तालाप होने लगा। कालपुरुषने श्रीब्रह्माजीका संदेश सुनाया कि अब आपकी लीलाका समय पूरा हो चुका है, इसलिए आपको अपनी लीलाको संगोपनकर अपने नित्य धाममें प्रवेश करना चाहिए। अभी वार्तालाप हो ही रहा था कि उसी समय महर्षि दुर्वासा राजभवनके द्वारपर पहुँचे और लक्ष्मणजीसे बोले कि मैं अत्यावश्यक कार्य हेतु अभी श्रीरामचन्द्रजीसे मिलना चाहता हूँ। लक्ष्मणजीने कहा—महात्मन्! आप अपना कार्य बतलायें, मैं उसे शीघ्र ही पूर्ण करूँगा।" किन्तु, क्रोधी स्वभाववाले दुर्वासाजीने कहा—"मुझे रामचन्द्रजीसे ही मिलना है; यदि तुम मुझे उनसे मिलने नहीं दोगे, तो मैं राजा रामचन्द्र तथा राज्यकी सारी प्रजाओंको अभिशाप देकर भस्म कर दूँगा।" लक्ष्मणजीने मन-ही-मन विचार किया कि सारी प्रजाओंके साथ श्रीरामचन्द्रजी और अपनेको भस्म करानेकी अपेक्षा मेरा अकेला भस्म होना ही उचित है। ऐसा सोचकर वे अकेले रामचन्द्रजीके पास पहुँचे।

अब तक कालपुरुषके साथ श्रीरामचन्द्रजीका वार्तालाप पूरा हो चुका था। किन्तु कालपुरुष अभी भी उपस्थित था। श्रीरामचन्द्रजीने पूछा—"लक्ष्मण! तुम असमयमें क्यों आये?" लक्ष्मणजीने कहा—"प्रभो! द्वारपर महर्षि दुर्वासाजी उपस्थित हुए हैं। वे केवल आपसे ही और अभी तुरंत मिलना चाहते हैं। विलम्ब होनेपर सारी प्रजाओंके साथ आपको और मुझे भी अपने अभिशापसे भस्म करनेके लिए प्रस्तुत हैं।" रामचन्द्रजीने कालपुरुषको विदा किया और बड़े उदास होकर गंभीर स्वरसे बोले—"क्या तुम्हें मेरी प्रतिज्ञाका स्मरण है? मैंने वार्तालापके बीच असमयमें आनेपर किसी भी व्यक्तिको प्राणदंड देनेकी प्रतिज्ञा की है। प्रिय व्यक्तिका त्याग करना ही सत्पुरुषोंके लिए प्राणदंड देनेके समान है। अतः मैं तुम्हारा जीवन भरके लिए परित्याग करता हूँ।"

लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणोंमें प्रणामकर राजभवनसे निकलकर सीधे सरयु नदीके तटपर पहुँचे। वहाँ वे सरयुमें स्नानकर अपने चित्तको समाहितकर ध्यानस्थ हो गये और अपने धाममें पहुँच गये।

इधर रामचन्द्रजीने दुर्वासाजीको बुलवाया। दुर्वासाजीके आनेपर उनका बड़ा ही आदर सत्कार किया और पूछा—"महर्षे! आपकी मैं क्या सेवा करुँ?" दुर्वासाजीने कहा—"मैं बहुत ही भूखा हूँ। आपके घरपर जो कुछ भी खाद्य सामग्री प्रस्तुत हो, उसे मुझे तुरंत खिलाएँ।" श्रीरामचन्द्रजीने घरमें जो कुछ खाद्य द्रव्य उपलब्ध था, उसे ऋषिके सामने परोस दिया। ऋषि उस सुस्वादु खाद्य सामग्रीको पेट भर भोजनकर संतुष्ट हुए और वहाँसे विदा हो गये।

रामचन्द्रजी लक्ष्मणके वियोगमें बहुत दुःखी हुए। उन्होंने लक्ष्मणजीके स्वधाम-गमनका समाचार पाकर स्वयं भी स्वधाम गमन करनेका विचार किया। उन्होंने अपने दोनों पुत्रों—लव, कुश तथा अपने भाईयोंके पुत्रोंको पृथक्-पृथक् राज्योंपर अभिषेककर अयोध्याकी सारी प्रजाको साथ लेकर सरयुके पवित्र तटपर उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने सबके साथ स्नान किया। इतनेमें आकाशसे सूर्यके समान चमकते हुए लाखों विमान वहाँ उपस्थित हुए। श्रीरामचन्द्रजी उपस्थित जनसमूहके साथ उन विमानोंमें चढ़कर अपने धाममें उपस्थित हुए।

यहाँ लक्ष्मणजीका त्याग एक बहाना मात्र था। श्रीरामचन्द्र लक्ष्मणका त्याग कभी नहीं कर सकते, क्योंकि लक्ष्मणजी धामस्वरूप हैं। वे श्रीकृष्णके प्रत्येक अवतारमें उनके साथ ही रहते हैं और उनकी सब प्रकारकी लीलाओंमें सहायक होते हैं। इस प्रकार लक्ष्मणजी नित्य साकेत धाममें श्रीरामसे पहले ही उपस्थित होकर उनके लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीरामचन्द्रजीके स्वधाममें आगमनपर उन्होंने उनका स्वागत किया।

* * *

प्राचीन कालमें इन्द्रके समान बल और पराक्रमसे सम्पन्न श्वेतकि नामके एक राजा थे। उस समय उनके जैसा यज्ञ करानेवाला, दाता और बुद्धिमान दूसरा केई नहीं था। उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले बहुतसे बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। यज्ञ और दानके सिवा उनके मनमें दूसरा कोई विचार ही नहीं उठता था। वे नये-नये यज्ञोंके अनुष्ठान और नाना प्रकारके दानोंमें लगे रहते थे। यज्ञ करते-करते ऋत्विजोंकी आँखें धुएँसे व्याकुल हो ऊठीं, आहुति देते-देते वे थक गये। उनकी अनुमति

लेकर राजाने नये-नये ऋत्विजोंको नियुक्त किया, किन्तु वे भी थक गये। राजाके द्वारा ढूँढ़नेपर भी उनको यज्ञ करानेवाले ऋत्विज नहीं मिले। अन्तमें वे ऋत्विजोंके शरणागत हुए। उन्होंने परामर्श दिया कि आप महादेव श्रीरुद्रके समीप जाईए, वे ही इसकी कोई व्यवस्था कर सकते हैं। महाराजा श्वेतकि कैलाश पर्वतपर जाकर श्रीरुद्रदेवको प्रसन्न करनेके लिए बिना खाये-पिये उग्र तयस्या करने लगे। उनकी घोर तपस्या देखकर शंकरजीने प्रसन्न होकर उनको दर्शन दिया और वर माँगनेके लिए कहा। महाराज श्वेतकिने अमित तेजस्वी श्रीरुद्रके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—"देव देवेश! सुरेश्वर! मैं शतवर्षीय एक महत् यज्ञ आरंभ करना चाहता हूँ, आप यदि मेरे उपर प्रसन्न हैं, तो आप स्वयं चलकर मेरा यज्ञ करायें।" शंकरजी मुस्कुराते हुए बोले—"यज्ञ कराना हमारा काम नहीं है। मैं तो स्वयं तुम्हारा यज्ञ नहीं कराऊँगा, किन्तु मेरे ही अंशभूत एक महाभाग श्रेष्ठ द्विज हैं, जो दुर्वासाके नामसे प्रख्यात हैं, वे ही तुम्हारा यज्ञ करायेंगें। रुद्रदेवने महर्षि दुर्वासाको बुलाकर राजा श्वेतकिका यज्ञ पूर्ण करानेके लिए आदेश दिया। महर्षि दुर्वासाने रुद्रदेवकी आज्ञाको शिरोधार्यकर विधि-विधानपूर्वक राजाका यज्ञ करवाया। महाराजा श्वेतकिकी इच्छा पूर्ण हुई और उन्होंने ऋत्विजोंको प्रचुर दक्षिणा देकर संतुष्ट किया।

* * *

महर्षि दुर्वासा बड़े ही तेजस्वी ऋषि थे। उनकी सर्वत्र ही बड़ी ख्याति फैल रही थी। एक समय महाराजा उर्व अपनी विवाह योग्य कन्या कन्दलीके लिए योग्य वर ढूँढ़ रहे थे। कन्दली बड़ी ही रूप और यौवन-सम्पन्ना किशोरी थी, किन्तु बड़ी ही कटुभाषी एवं झगड़ालू थी और बात-बातपर क्रोधित हो जाती थी। इसके

पिता किसी योग्य वरसे इसका विवाह करना चाहते थे। वे अपनी कन्या कन्दलीको लेकर महर्षि दुर्वासाके आश्रमपर पहुँचे। उन्होंने बड़ी नम्रतापूर्वक दुर्वासाजीको प्रणाम किया तथा अपनी कन्याको पत्नीके रूपमें ग्रहण करनेके लिए प्रार्थना की। ऋषिने रूप-यौवनसे सम्पन्न कन्दलीको देखकर अपनी सम्मति दे दी। जब विवाह होनेका समय आया, तो महाराजाने महर्षिसे यह प्रार्थना की कि आप कृपाकर इसके अपराधोंको क्षमा करेंगे। अन्ततः इसके सौ अपराधोंको अवश्य ही क्षमा करेंगे। दुर्वासाजीने इसे स्वीकार कर लिया। विवाह होनेके बाद कन्दली दुर्वासाजीके आश्रममें आयी। यहाँ आनेपर दुर्वासाजीको यह मालूम हुआ कि यह कलहप्रिय है, बात-बातमें अपमानजनक व्यवहार करती है। बहुत कहने-सुननेपर भी इसका स्वभाव नहीं बदला। कुछ ही दिनोंमें उसने जब दुर्वासाजीके प्रति सौसे भी अधिक अपमानजनक व्यवहार किये, तब महर्षिसे रहा नहीं गया और उन्होंने अभिशाप देकर उसे भस्म कर डाला।

कुछ समय और बीता वे कुछ दिनोंके लिए द्वारकामें निवास कर रहे थे। वहाँ यदुवंशमें उत्पन्न एक रूप-यौवन-सम्पन्ना एकानंशा नामक कन्या थी। यादवोंने इस कन्याका विवाह महर्षि दुर्वासासे करवाया था। किन्तु, कुछ दिनोंके बाद ही महर्षि दुर्वासा उससे विरक्त होकर उक्त एकानंशाका भी त्याग कर दिया और पुनः अपने आश्रममें लौट आये।

* * *

कुरुक्षेत्रमें मुद्‌गल नामक एक ऋषि थे। वे बड़े ही धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे। खेतोंसे फसल कट जानेके बाद जो अन्नके दाने खेतमें गिर जाते थे, उन्हें इकट्ठेकर (शिल और उंच्छवृत्तिसे)

अपनी जीविका चलाते थे। वे सदा सत्य बोलते और किसीकी भी निन्दा नहीं करते थे। उन्होंने अतिथियोंकी सेवाका व्रत ले रखा था। वे अपनी स्त्री और पुत्रके साथ रहकर पंद्रह दिनोंमें कुछ अन्न संग्रह करते थे और उसके द्वारा इष्टीकृत नामक यज्ञका अनुष्ठान करते तथा अतिथियोंकी सेवाकर बचे-खुचे अन्नसे पंद्रह दिनोंमें एक ही बार भोजन करते थे। जब तक वे भोजन नहीं करते, तब तक सैकड़ों अतिथियोंके द्वारा भोजन किये जाने पर भी वह भोज्य पदार्थ समाप्त नहीं होता था।

एक समय दुर्वासा ऋषि पागलोंकी तरह अटपटा वेष धारणकर, नंग-धड़ंग होकर नाना प्रकारके कटु वचन बोलते हुए महात्मा मुद्गलके आश्रममें पधारे और बोले—"विप्रवर! मुझे बड़ी भूख लगी है, मैं भोजन करना चाहता हूँ।" मुद्गलने कहा—"आपका स्वागत है।" ऐसा कहकर उन्होंने पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीय आदि पूजन सामग्री भेंट की और उन्हें भोजन अर्पित किया। दुर्वासाजीने सारा भोजन उदरस्थकर जूठन लेकर अपने सारे अंगोमें पोत लिया और वे जैसे आये थे, वैसे ही चल दिये। मुद्गलजी सपरिवार भूखे रह गये।

पंद्रह दिनोंके बाद पुनः दूसरा पर्वकाल आनेपर दुर्वासाजी पुनः वहाँ पहुँचे और उन्होंने सारा अन्न खा लिया। मुद्गल मुनि पुनः अगले पर्वकी तैयारी करने लगे। पंद्रह दिनोंके पश्चात् ठीक समयपर पुनः दुर्वासाजी पहुँचे और सारा-का-सारा अन्न खा लिया। इस प्रकार लगातार छः बार ठीक पर्वके समय उपस्थित होकर सारा अन्न ग्रास कर लिया। लगातार इतने दिनों तक भूखे रहनेपर भी मुनिके मनमें कोई विकार नहीं हुआ। उनके हृदयको क्रोध, द्वेष, घबराहट और अपमान छुआ तक नहीं। ऐसा देखकर

महर्षि दुर्वासा अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले—"ब्रह्मन्! इस संसारमें ईर्ष्या, द्वेष तथा अपमानरहित होकर दान देनेवाला मनुष्य तुम्हारे समान और दूसरा नहीं है। भोजनसे प्राणोंकी रक्षा होती है। भूखा रहनेसे मन चंचल होता है, उस समय उसे रोकना बड़ा ही कठिन होता है, परन्तु तुम सिद्ध हो चुके हो। तुमने सभी लोकोंको अपनी कठोर तपस्यासे जीत लिया है, अतः तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति हो।" इतनेमें ही स्वर्गसे एक विमान आया, किन्तु स्वर्गलोकके गुण और दोषोंको नश्वर जानकर उन्होंने उसे लौटा दिया।

द्वापरमें महर्षि दुर्वासा

यदुवंशी महाराज शूरसेनके पुत्र वसुदेवजी थे। उन्हें एक कन्या भी हुई जिसका नाम पृथा था। भूमण्डलमें उसके रूपकी तुलनामें कोई दूसरी स्त्री नहीं थी। शूरसेनने संतानहीन अपने फुफेरे भाई कुन्तिभोजको वह कन्या अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार दे दी। तबसे उसका एक नाम कुन्ती भी हुआ। उन्होंने कुन्तीको गोद ले लिया। पिता कुन्तिभोजने पृथाको घरपर देवताओंके पूजन और अतिथियोंके सत्कारका कार्यभार सौंपा था। एक समय कठोर व्रतका पालन करनेवाले तथा धर्मके विषयमें अपने निश्चयको सदा गुप्त रखनेवाले दुर्वासाजी राजा कुन्तिभोजके राजभवनमें पधारे। पृथा बड़ी सावधानीसे उनकी सेवा करने लगी। ऋषि बड़े उग्र स्वभावके थे। उनका हृदय अत्यन्त कठोर था, फिर भी राजकुमारी पृथाने सब प्रकारके प्रयत्नोंसे उन्हें पूर्ण संतुष्ट कर दिया। दुर्वासाजीने पृथापर आनेवाले भावी संकटका विचारकर उसके धर्मकी रक्षाके लिए अथर्ववेदीय प्रसिद्ध वशीकरण मंत्र प्रदान किया और उसके प्रयोगकी विधि भी बता दी। तत्पश्चात् वे मुनि उससे बोले—"इस

मंत्रके द्वारा तुम जिस जिस देवताका आह्वान करोगी, उस उसके अनुग्रहसे तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा।" ब्रह्मर्षि दुर्वासाके ऐसा कहनेपर कुन्तीके मनमें बड़ा कौतूहल उत्पन्न हुआ। वह राजकन्या अभी कुमारी थी, फिर भी उसने मंत्रकी परीक्षाके लिए सूर्यदेवका आह्वान किया। आह्वान करते ही उसने देखा कि सूर्यदेव उसके सामने उपस्थित हैं। इस महान आश्चर्यकी बातको देखकर निर्दोष अंगोंवाली कुन्ती चकित हो उठी। सूर्यदेवने कहा—"सुन्दरी कुन्ती! मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? मैं तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति करानेके लिए उपस्थित हुआ हूँ, तुम मुझे सूर्यदेव समझो।" कुन्ती लोक-लज्जाके भयसे सकुचित हो उठी। वह नारी सुलभ लज्जाके भी विवश थी। सूर्यदेवने पुनः कुन्तीसे कहा—"राजकुमारी! तुम्हें बड़ा ही शूरवीर महादानी और स्वाभिमानी, दिव्य कुण्डल और कवचको धारण किये हुए एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न होगा, साथ ही तुम्हारा कुँआरापन भी अटूट रहेगा।" ऐसा कहते ही कुन्तीको एक पुत्र हुआ। वही पुत्र आगे चलकर महावीर कर्णके रूपमें प्रसिद्ध हुआ। बादमें इसी प्रकार आह्वान करनेपर धर्मराज, पवनदेव एवं देवराज इन्द्रके द्वारा भी क्रमशः युधिष्ठिर, भीम एवं अर्जुन जैसे सुपुत्र प्राप्त हुए। यह महर्षि दुर्वासाजीकी कृपाका ही फल था।

* * *

स्वयं भगवान श्रीकृष्णका आविर्भाव हो चुका था। अब वे कुछ बड़े ही गये थे। दाम, श्रीदाम, सुदाम, वसुदाम, स्तोककृष्ण, उज्वल, लवंग, सुबल, मधुमंगल आदि सखाओंके साथ गोकुल स्थित रमणरेतीमें खेल रहे थे। कभी एक दूसरेपर धूल निक्षेप कर रहे थे, कभी आँखमिचौनी खेल रहे थे और कभी एक दूसरेसे परस्पर

भिड़कर एक दूसरेको पराजित करनेकी चेष्टा कर रहे थे। पराजित होनेवाला अपने कन्धोंपर पराजित करनेवालेको बैठाकर कुछ दूर तक ले जाता था। इतनेमें दुर्वासाजी घूमते-घूमते उसी ओरसे निकले। गोप बालकोंकी मनोहारी क्रीड़ाओंको देखकर, विशेषतः कृष्ण और बलदेवका अनुपम सौंदर्य-माधुर्य देखकर वे खड़े होकर एकटक उन्हें निहारने लगे। उन्हें अपनी ओर निहारते हुए देखकर श्रीकृष्णने श्रीदामका हाथ पकड़ लिया और ऋषिके समीप पहुँचे। ये दोनों बच्चे धूलसे धूसरित हो रहे थे। दुर्वासाजी स्थिर न रह सके। वे काँपते हुए बैठ गये। कृष्णने उनसे मुस्कुराते हुए और अंगभंगी करते हुए कहा—"बाबा! मैंने श्रीदामको पराजित कर दिया है ना।" इस प्रकार बार-बार पूछने लगे। किन्तु, दुर्वासाजी कोई उत्तर न दे सके। वे स्तम्भित हो गये और बिल्कुल मौन हो गये। कृष्णने पुनः पूछा—"बाबा बोलते क्यों नहीं, गूँगे तो नहीं हो।" यह कहकर वे उनकी गोदीमें बैठ गये और उनकी दाढ़ी पकड़ते हुए बोले—"बाबा! बोलो न, मैं जीत गया और श्रीदाम पराजित हो गया।" किन्तु, ऋषि फिर भी कुछ न बोल सके। उन्हें मौन देखकर कृष्ण उनकी गोदीसे उठकर अंगभंगी करते हुए मुस्कुराने लगे। दुर्वासाजी उनके मुखमें अपने-आप बलात् खिंच गये। वहाँ उन्होंने कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंको देखा, कोटि-कोटि ब्रह्मा, विष्णु और महेशको भी देखा। कभी इस ब्रह्माण्डमें प्रवेश करते, कभी उस ब्रह्माण्डमें । इस प्रकार घूमते-घूमते मानो करोड़ों युग बीत गये। सौभाग्यवश वे एक ऐसे ब्रह्माण्डमें पहुँचे जहाँ श्रीकृष्णकी प्रकट लीला चल रही थी और उस लीलामें पूर्वकी भाँति वे श्रीकृष्ण और सखाओंके पास पहुँचे। उस समय ज्योंही कृष्णने मुस्कराकर मुख खोला और वे बाहर आ गये। दुर्वासाजी

कृष्णका ऐसा अद्‌भुत चरित्र देखकर उनके चरणोंमें गिर गये एवं स्तव-स्तुति करने लगे। कृष्णकी कृपासे उनका जीवन कृतकृत्य हो गया। उनकी यह शंका कि श्रीकृष्ण केवल नन्दनन्दन हैं या परब्रह्म हैं, दूर हो गयी। अब वे श्रीनन्दनन्दनको ही परमपरात्पर ब्रह्म—स्वयं-भगवान जानकर कोटि-कोटि बार दण्डवत् प्रणामकर अपने आश्रममें लौट गये। श्रीकृष्ण भी भक्तपर कृपाकर ग्वालबालोंके साथ खेलते हुए वहाँसे दूसरी ओर निकल गये।

* * *

एक समय प्रसिद्ध दुर्वासाजी गोपराज वृषभानु महाराजके राजभवनमें पधारे। वे कुछ दिन तक वहींपर रहे। वृषभानु महाराजजीने अपनी सर्वगुण सम्पन्ना लाड़ली बेटी कुमारी राधिकाको उनकी सेवा-शुश्रूषाके लिए लगा दिया। राजकुमारी राधिकाकी प्रीतिपूर्ण सेवा-शुश्रूषासे महर्षि बड़े संतुष्ट हुए और उन्होंने वरदान देते हुए कहा—"बेटी तुम पाककलामें सिद्ध हस्त होगी, तुम्हारे द्वारा प्रस्तुत की हुई प्रत्येक भोज्य-सामग्री अमृतसे भी बढ़कर सुस्वादु होगी तथा वह बल, बुद्धि, सौंदर्य एवं आयुवर्धक होगी। उसका सेवन करनेवाला व्यक्ति कभी किसीसे पराजित नहीं होगा, उसके शरीरकी कान्ति कभी भी क्षीण नहीं होगी।" ऐसा कहकर वे अपने आश्रममें लौट गये। व्रजमें सर्वत्र ही राधिकाजीकी पाक कलाकी निपुणता प्रसिद्ध हो गयी।

यशोदा मैयाने भी ब्रजवासियोंसे विशेषतः पौर्णमासीजीसे राधिकाजीकी पाक कलाकी सिद्धता तथा उसके द्वारा पाक की हुई सामग्रियोंका प्रभाव सुना। वे कृष्णको श्रीमती राधिकाकी पकाये हुए सुस्वादु भोज्य पदार्थोंको खिलाना चाहती थीं। उन्होंने सोचा कि किसी प्रकारसे श्रीमती राधिकाको अपने राजभवनमें बुलाकर

रसोई बनवानी चाहिए। मेरा बेटा बहुत ही दुबला-पतला और कमजोर है, भोजनमें उसकी रुचि नहीं है। इधर प्रायः नाना प्रकारके योग और आसुरी मायासे युक्त दुष्ट दैत्योंसे उसका पाला पड़ता रहता है। ऐसा सोचकर योगमाया पौर्णमासी, कुन्दलता, विशाखा आदिकी सहायतासे जावटमें निवास करनेवाली राधाजीकी सास जटिलाको समझा-बुझाकर श्रीमती राधिकाको अपने गृहमें प्रतिदिन बुलवाती थीं। गौड़ीय गोस्वामियोंके ग्रन्थोंमें इसका विषद वर्णन संरक्षित है।

* * *

जुएमें छल-कपटसे धर्मात्मा पाण्डवोंको जीतकर पापाचारी दुरात्मा दुर्योधनने दुःशासन, कर्ण और शकुनिके परामर्श और सहायतासे बारह वर्षोंके लिए उन्हें वनवासमें भेज दिया था। पाण्डव लोग उस समय काम्यवनमें निवास कर रहे थे। वे किसी प्रकारसे भिक्षावृत्तिसे जीवनका निर्वाह करते हुए भगवानकी लीला कथाओंके स्मरण, कीर्तन आदिमें जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत कर रहे थे। दुष्ट दुर्योधन, छल-कपट विद्यामें निपुण कर्ण और दुःशासन आदिके साथ भाँति-भाँतिके उपायोंसे पाण्डवोंको संकटमें डालनेकी युक्ति कर रहा था। उसी समय महातेजस्वी महर्षि दुर्वासाजी अपने दस हज़ार शिष्योंको साथ लिए हुए स्वेच्छासे वहाँ उपस्थित हुए। परम क्रोधी दुर्वासा मुनिको आया देख दुर्योधनने बहुत नम्रतापूर्वक उन्हें अतिथिके रूपमें निमन्त्रित किया। दुर्योधन स्वयं दासकी भाँति बड़ी सावधानीसे दिन-रात आलस्य छोड़कर उनकी सेवामें लगा रहा। मुनि बड़े अटपटे थे। कभी सभीके सो जानेपर आधी रातके समय भोजन माँगते, फिर स्नान करनेके लिए चले जाते, लौटकर कहते कि मैं नहीं खाऊँगा, आज मुझे भूख नहीं हैं। ऐसा कहकर अदृश्य हो जाते। कभी सुस्वादु भोजनकी भी निन्दा करते हुए भोजन

करनेसे निषेध कर देते। किन्तु दुर्योधनके मनमें विकार या क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ। इससे वे दुर्धर्ष मुनि बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ, मनमें जो भी इच्छा हो माँग लो।" दुर्योधन अपने दुष्ट मित्रोंसे परामर्शकर पहलेसे ही वर माँगनेके लिए प्रस्तुत था। वह बोला—"महर्षे! हमारे कुलमें महाराज युधिष्ठिर सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं। वे धर्मात्मा पाण्डुकुमार अपने भाईयोंके साथ काम्यवनमें निवास कर रहे हैं। आप कृपया जिस प्रकार मेरे अतिथि हुए हैं, उसी तरह अपने सारे शिष्योंके सहित उनके लिए अतिथि हो जाइए। मेरी विशेष प्रार्थना यह है कि आप द्रौपदीके भोजनके पश्चात् ही वहाँ पर पधारें।" दुर्वासाजी तथास्तु कहकर काम्यवनकी ओर चल दिये।

दस हजार शिष्योंके साथ क्रोधी एवं दुर्धर्ष मुनि काम्यवनमें पाण्डवोंके आश्रमपर पहुँचे। महारानी द्रौपदी समस्त वैष्णवों, ब्राह्मणों, अतिथियों और पाँचों पतियोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करनेके पश्चात् सुखपूर्वक बैठकर विश्राम कर रही थी। महाराज युधिष्ठिर दुर्वासा मुनिको शिष्योंके साथ आते देखकर उठ खड़े हुए और उनका सब प्रकारसे स्वागत किया। उनकी विधिपूर्वक पूजाकर उन्हें भोजनके लिए निमंत्रण दिया। ऋषिने कहा—"हमलोग स्नानकर अभी आ रहे हैं।" ऐसा कहकर वे पास ही सरोवरमें स्नान करनेके लिए चले गये।"

उधर धर्मभीरु पतिव्रता शिरोमणी द्रौपदीको बड़ी चिन्ता हुई कि महर्षिको क्या खिलाया जाए? आश्रममें कुछ भी नहीं था। बहुत पहलेकी बात थी—धर्मराज युधिष्ठिरकी आराधनासे प्रसन्न होकर सूर्यदेवने उन्हें एक ऐसी बटलोई दी थी कि उस बटलोईमें पकाया हुआ भोज्य पदार्थ तब तक भरा-पूरा रहता था, जब तक द्रौपदी सबको खिला-पिलाकर स्वयं नहीं भोजन कर लेती।

उसके खानेसे पूर्व हजारों या अगणित अतिथियोंको भोजन करानेपर भी उसका अन्न समाप्त नहीं होता था। किन्तु, आज बड़ी चिन्ताका विषय यह था कि द्रौपदीने भोजनके पश्चात् उस बर्तनको भी अच्छी तरहसे माँजकर रख दिया था। सभी लोग बड़े चिंतित थे, कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। अन्तमें द्रौपदी मन-ही-मन कंसनिसूदन, आनन्दकंद भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्णका स्मरण करने लगी। द्रौपदीकी पुकार सुनकर भला कृष्ण कैसे रह सकते थे। वे पलंग छोड़कर झट वहाँ उपस्थित हुए।

द्रौपदीके शरीरमें मानो नवीन प्राणोंका संचार हुआ। उसने कृष्णको प्रणामकर दुर्वासाके आने आदिका सारा समाचार सुनाया तथा उपस्थित विपत्तिसे रक्षा करनेके लिए प्रार्थना करती हुई बोली—"हे भक्तवत्सल! मैं आपके शरणमें आयी हूँ। आप सबके आश्रय हैं। आप ही परात्पर, समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर और सर्वसमर्थ हैं, अतः वर्तमान संकटसे हमारा उद्धार करें।"

तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—"मुझे बड़ी भूख लगी है, मैं भूखसे पीड़ित हूँ। अतः पहले मुझे अतिशीघ्र भोजन कराओ।" उनकी बात सुनकर द्रौपदी बड़ी लज्जित हुई और बोली—"भगवन्! सूर्यदेवकी दी हुई बटलोईका अन्न समाप्त हो चुका है। सबको खिला-पिलाकर मैंने भी भोजन कर लिया है।" कृष्णने द्रौपदीसे बटलोई मँगवाई। उसके भीतर कोई सागका एक छोटा-सा टुकड़ा चिपका हुआ था। अपने अंगुलियोंसे कृष्णने उसे निकालकर खा लिया और ऊपरसे पेट भर पानी पीते हुए डकारकर बोले कि सागसे संपूर्ण विश्वके आत्मा, यज्ञोंके भोक्ता सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि तृप्त और संतुष्ट हों। तत्पश्चात् मुनियोंको शीघ्र ही बुलानेके लिए सहदेवको भेजा। मुनि लोग उस समय सरोवरमें स्नानकर मंत्रका जप रहे थे। अकस्मात् उन्हे बार-बार अन्न-रससे युक्त

डकारें आने लगीं, उनका पेट पूर्ण रूपसे भर गया। वे सभी मुनि दुर्वासाकी ओर देखकर बोले—"हमारा पेट पूर्णरूपसे भर गया है। अब हम युधिष्ठर महाराजजीके यहाँ भोजन करनेमें समर्थ नहीं हैं।" दुर्वासाजीने सोच समझकर कहा—"मुनियों! दुष्ट दुर्योधनका अन्न खाकर उसके परामर्शसे महात्मा पाण्डवोंके प्रति हमने महान अपराध किया है। मैं परम भक्त अम्बरीष महाराजके प्रभावको स्मरणकर भयभीत हो रहा हूँ। कहीं पाण्डवोंके अपराधसे हमारा सर्वनाश न हो जाए, अतः यहाँसे भाग चलनेमें ही कल्याण है।" ऐसा कहकर वे सारे मुनियोंके साथ इधर-उधर दशों दिशाओंमें भाग गये।

सहदेवने सर्वत्र खोज करने पर भी मुनियोंको कहीं नहीं देखा। वे उस सरोवरके निकट रहनेवाले तपस्वी मुनियोंके मुखसे उनके भागनेका समाचार सुनकर युधिष्ठिरके पास लौट आये और सारा वृत्तान्त उनको निवेदन किया। श्रीकृष्णकी कृपासे पाण्डवोंका संकट टल गया। अच्छी तरहसे विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि दुर्वासाजी परम भगवत्-भक्त हैं। कभी-कभी वे ज्ञनियों तथा योगियोंसे भक्तोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करनेके लिए तरह-तरहके अद्भुत् उपायोंका अवलम्बन करते हैं, जिसे साधारण लोगोंके लिए समझ पाना बड़ा कठिन है।

* * *

किसी पर्वके अवसर पर गोपियाँ वृन्दावनसे महर्षि दुर्वासाके दर्शनके लिए यमुना पार दुर्वासा आश्रममें जाना चाहती थीं। उनके सिर पर मीठे-मीठे सुस्वादु पकवानोंसे भरे हुए बड़े-बड़े थाल थे। जब वे यमुनाके तटपर उपस्थित हुईं, तो उन्होंने देखा कि यमुनामें बाढ़ आयी हुई है तथा बड़ी-बड़ी तरगें उठ रही हैं। पार उतारनेके लिए कोई भी नाव प्रस्तुत नहीं है। बड़ी भीषण स्थिति थी, हठात्

उन्होंने श्रीकृष्णको कहींसे अपनी ओर आते देखा। कृष्णने पूछा कि आप लोग कहाँ जा रही है? गोपियोंने कहा—"हम दुर्वासाजीका दर्शन करनेके लिए उस पार जाना चाहती हैं, किन्तु यमुनामें भयानक बाढ़के कारण हम बड़ी चिंतित हो रही हैं। आप ही बतलाएँ हम कैसे यमुनाको पार करें?" श्रीकृष्णने गंभीर होकर कहा—"तुम यमुनासे कहना यदि कृष्णने कभी नारीकी ओर नहीं देखा है, कभी नारियोंसे संग नहीं किया है, तो कृष्णके इस प्रभावसे हम आपके ऊपरसे होकर उस पार चली जाएँ।" गोपियोंने ऐसा ही किया। उन्होंने यमुनाको प्रणामकर कृष्णने जैसा कहा था, वैसा ही कहा और यमुना जलके ऊपर पैदल चलकर ही उसे पार कर लिया और दुर्वासा ऋषिके आश्रममें पहुँचीं।

गोपियोंने श्रद्धापूर्वक ऋषिको प्रणामकर उन्हें अपने साथ लाये हुए विभिन्न प्रकारके पकवानोंको अर्पण कर दिया। क्षणमात्रमें ही ऋषि सारे पकवानोंको हड़प गये, प्रसादके लिए भी कुछ नहीं रखा और गोपियोंको मनमाने आशीर्वाद दिए। जब गोपियाँ जानेके लिए प्रस्तुत हुईं, तो उन्होंने महर्षि दुर्वासासे यमुना पार करनेका उपाय पूछा। दुर्वासाजीने पूछा कि आपलोगोंने आते समय यमुनाको कैसे पार किया था? गोपियोंने उत्तर दिया—"श्रीकृष्णके निर्देशसे हमने यमुनाजीसे कहा कि यदि कृष्णने कभी भी किसी स्त्रीका संग या स्त्रीको देखा तक नहीं हो, तो उसके प्रभावसे हम यमुनाजीको पार कर जाएँ। ऐसा कहनेसे यमुनाजीने हमें पथ प्रदान किया तथा हमने पैदल ही यमुनाको पार लिया।" दुर्वासाजी बोले—"तुमलोग यमुनाके समीप यह कहना कि यदि महर्षि दुर्वासाने जीवन भर कभी कुछ नहीं खाया है, तो उनके उस प्रभावसे हम आपको पैदल ही पार कर जाएँ।" गोपियोंने ऐसा ही किया और सहज ही यमुनाको पार कर लौट आयीं।

गोपियाँ लौटकर जब श्रीकृष्णसे मिलीं, तब उन्होंने श्रीकृष्णसे प्रश्न किया कि आप और दुर्वासाजी दोनों ही बड़े अटपटे और दुर्बोध हैं। दिन-रात गोपियोंके साथमें रहनेवाले आप कभी भी स्त्री दर्शन नहीं करते और दुर्वासाजीने हमलोगोंके सामने ही हमारे सारे पकवान खा लिए, किन्तु वे कभी नहीं खाते। आप दोनोंके वचनोंको हम समझ नहीं पा रही हैं। कृष्णने कहा—"मैं सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता। मुझमें संसारी लोगोंके जैसा कर्त्तापन और भोक्तापनका अभिमान नहीं है। दुर्वासाजीमें भी स्थूल या सूक्ष्म शारीरिक या मानसिक कर्त्ता और भोक्तारूप स्थूल अभिमान नहीं है, इसलिए वे सबकुछ खाकर भी कुछ नहीं खाते। हमको समझना साधारण लोगोंके लिए अत्यन्त कठिन है। विरले तत्वज्ञानी ही इसको समझ सकते हैं।" कृष्णने गोपियोंके माध्यमसे जगतको इस तत्त्वकी शिक्षा दी है।

* * *

एक समयकी बात है, एक अद्भुत् ब्राह्मण द्वारकामें आये। चिथड़े पहनकर हाथमें बेलका डंडा लिए वे घूम रहे थे। उनकी दाढ़ी और मूछें भी बढ़ी हुई थी। वे और कोई नहीं बल्कि दुर्वासा मुनि ही थे। दुर्वासा शब्दका अर्थ है—फटे पुराने चिथड़े, मैले-कुचैले वास अर्थात् कपड़ोंको धारण करनेवाला अथवा केवल दुर्वा घासके रसको पीकर जीवित रहनेवाला। दुर्वासाजी कभी-कभी दूर्वा ग्रहणकर प्राण धारण करते थे। वे कभी मैले-कुचैले चिथड़ोंको धारणकर लज्जा निवारण करते थे, इसलिए लोग उन्हें दुर्वासाके नामसे जानते थे।

दुर्वासाजी बड़े-बड़े राजमार्गों, गलियों, कूचों और चौराहोंपर उच्च स्वरसे कहते फिर रहे थे कि मुझ दुर्वासा ब्राह्मणको कौन अपने घरमें सत्कारपूर्वक ठहरायेगा। मैं बहुत ही क्रोधी हूँ। जो

मुझे घरमें ठहराए, वह मुझे क्रोध न दिखाए और मेरी सेवा करे। जब किसीने भी उनको अपने घरमें नहीं ठहराया, तब भगवान श्रीकृष्णने उन्हें अपने राजभवनमें अतिथिके रूपमें ठहराया और स्वयं यथोचितरूपमें उनकी सेवा शुश्रूषा करने लगे। कभी हजार मनुष्योंका भोजन अकेले ही खा लेते, कभी असमयमें भोजन माँगते, कभी बहुत अधिक खाते, कभी अकारण ही क्रोध कर बैठते, तो कभी अकस्मात् ही जोर-जोरसे रोने लगते तथा कभी अचानक हँसने लगते। एक दिन उन्होंने अपने ठहरनेके स्थानपर बिछी हुई शय्याओं, बिछावनों तथा वस्त्र-आभूषणोंसे अलंकृत सुन्दर कन्याओंको जलाकर भस्म कर दिया और स्वयं वहाँसे खिसक गये। थोड़ी देर बाद श्रीकृष्णके समीप उपस्थित होकर बोले—"कृष्ण! मैं बहुत ही भूखा हूँ, मुझे तुरन्त स्वादिष्ट खीर खिलाओ।"

श्रीकृष्ण मानो पहलेसे ही प्रस्तुत थे। उन्होंने मुनिको उसी समय स्वादिष्ट खीर निवेदन किया। ऋषिने थोड़ी-सी खीर खाकर श्रीकृष्णको आदेश दिया कि तुम इस गरमागरम खीरको अपने सारे अंगोंमें पोत लो। श्रीकृष्णने वैसा ही किया। उन्होंने अपने सिर तथा सारे अंगोंमें उस जूठी खीरको पोत लिया और सामने खड़ी हुई, मुस्कुराती हुई रुक्मिणीजीके अंगोमें भी खीर पोत दिया। इतनेमें अटपटे मुनिने सामने खड़े हुए एक रथमें महारानी रुक्मिणीको घोड़ेकी जगह जोत दिया और स्वयं उस रथपर बैठकर रुक्मिणीजीको चलनेके लिए निर्देश दिया। दुर्वासाजी अपने तेजसे अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे। वे कृष्णके सामने ही भोली-भाली रुक्मिणीको चाबुकसे भी मारने लगे। ऐसा देखकर यादवोंको बड़ा क्रोध हुआ। बेचारी रुक्मिणी रास्तेमें लड़खड़ाकर गिर पड़ीं, परन्तु दुर्बोध मुनिने फिर भी चाबुकसे उन्हें हाँकना नहीं छोड़ा। जब वे नहीं उठीं, तो दुर्वासाजी रथसे कूदकर पैदल

ही दौड़कर भागने लगे। श्रीकृष्ण उसी अवस्थामें शरीरमें खीर पोते हुए ही दुर्वासाके पीछे-पीछे दौड़ने लगे पड़े तथा कहने लगे कि भगवन्! आप प्रसन्न होवें। दुर्वासाजी कृष्णकी ओर देखकर बोले—"महाबाहो श्रीकृष्ण! तुमने स्वभावसे ही क्रोधको जीत लिया है, हे गोविन्द! मैंने तुम्हारा कोई भी अपराध यहाँ नहीं देखा। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। अतः तुम मुझसे मनोवाञ्छित वर माँग लो। तीनों लोकोंमें अनन्त काल तक तुम्हारी पुण्य कीर्ति बनी रहेगी तथा त्रिभुवनमें तुम प्रधान बने रहोगे। तुम्हारी जो जो वस्तुएँ मैंने तोड़ी-फोड़ी, जलाई या नष्ट कर दी हैं, वे यथापूर्व हो जाएँ। तुम्हारे अंगोमें जहाँ तक खीर लगी हुई है वहाँ तकके अंगोंमें चोट लगनेसे तुम्हे मृत्युका भय नहीं रहेगा। हे अच्युत! तुम जबतक चाहोगे इस जगतमें अजर-अमर बने रहोगे। किन्तु, तुमने अपने पैरोंके तलवोंमें जूठी खीर नहीं लगाई। तुमने ऐसा क्यों किया? तुम्हारा यह कार्य मुझे प्रिय नहीं लगा।" तत्पश्चात् कृष्णके अंग अद्भुत् कान्तिमय हो उठे, ऋषिने रुक्मिणीसे भी प्रसन्नता पूर्वक कहा—"बेटी रुक्मिणी, तुम संपूर्ण विश्वकी स्त्रियोंमें परम यशस्विनी होओगी और सभी लोकोंमें सर्वोत्तम कीर्तिको प्राप्त करोगी। तम्हें बुढ़ापा या रोग कभी नहीं व्यापेगा। तुम्हारी अंगकांति कभी नहीं मुरझाएगी। तुम कृष्णकी सोलह हजार रानियोंमें प्रधान तथा कृष्णकी सर्वाधिक प्रियतमा होओगी। दुर्वासाजी ऐसा कहकर तत्क्षण अन्तर्धान हो गये।

* * *

अचिन्त्य प्रभाव सम्पन्न भगवान श्रीकृष्णने चतुराईसे कौरवों और पाण्डवोंमें महाभारतका युद्ध कराकर पृथ्वीका भार अनेक अंशोंमें उतार दिया था। श्रीबलदेवजीके साथ सवयं कृष्णने भी भू-भारस्वरूप असुर श्रेणीके भूपालोंका वध किया था, परन्तु दुर्जेय

यदुकुलके विद्यमान रहनेके कारण कृष्ण निश्चिन्त नहीं हो सके थे। वे यदुकुलका भी ध्वंस करवाकर निश्चिन्तरूपमें स्वधाम गमन करना चाहते थे। साधारण रूपमें शास्त्रोंका यह विचार है कि जो लोग भगवानकी सेवा करते हैं, वे दैव स्वाभावापन्न साधु या भक्त कहलाते हैं। इसके विपरीत कृष्णसेवासे विमुख असुर या दैत्य कहलाते हैं। दैत्य या असुरगण स्वाभाविक रूपसे कृष्णका संहार करनेकी चेष्टा करते हैं। ऐसे दैत्य-दानवोंके संहारके द्वारा ही श्रीकृष्णके द्वारा युगावतारका कार्य सम्पन्न होता है। अधिकांश लोगोंकी यह धारण है कि भगवानका अंश होनेके कारण यदुवंश पृथ्वीका भार नहीं हो सकता, क्योंकि उनमें कृष्णसेवाकी भावना निहित रहती है। किन्तु, इस विषयको भली-भाँति समझनेकी चेष्टा करनी चाहिए कि कौरव और पाण्डव भी श्रीकृष्णके सम्बन्धी और कुटुम्बी थे। वे भी पृथ्वीका भार बढ़ानेके लिए आविर्भूत नहीं हुए थे। किन्तु, उनमें से पाण्डवगण कृष्णके सेवक थे। वे सदा-सर्वदा सेवामें तत्पर रहते थे, किन्तु दुर्योधन आदि कृष्णके सम्बन्धी होनेपर भी दुष्ट स्वभाववाले महात्याचारी, कृष्णसे विमुख दैत्य-दानव ही थे। महाभारत युद्धमें श्रीकृष्णने चतुराईसे भगवत्-विमुख इन दैत्य-दानवोंका वध करवाकर पृथ्वीका भार उतारा था।

यदुवंशियोंमें भी भगवान श्रीकृष्णकी सेवामें तत्पर रहनेवाले जो उनके परिकर थे, भगवानके साथ ही अप्रकट लीलामें प्रवेश किये थे। किन्तु कृष्णसे विमुख यादवगण जनसाधारणकी दृष्टिमें अपनेको कृष्णकी भाँति पूज्य समझकर लोगोंमें भ्रम उत्पन्न कर रहे थे। केवल ऐसे कृष्णविमुख यादवोंको ही परस्पर कलहमें ध्वंस करवाकर पृथ्वीका अवशिष्ट भार भी श्रीकृष्णने दूर किया था। परस्पर कलहके द्वारा ही कौरवों तथा पाण्डवोंमें युद्ध हुआ

और उस युद्धमें मारे गये दोनों पक्षोंके योद्धओंके साथ श्रीकृष्णसे विमुख व्यक्तियोंका संहार सम्भव हुआ था। किन्तु, श्रीकृष्णने इन दोनों युद्धोंमें कृष्ण-सेवामें तत्पर भक्तों या परिकरोंका संहार नहीं करवाया था। उसमें केवल पृथ्वीके भारस्वरूप दैत्य-दानवोंका संहार करवाकर पृथ्वीका भार उतारा था। वास्तवमें यदुवंशियोंकी ध्वंस-लीला इन्द्रजालके समान थी, जिसके द्वारा कृष्णके परिकर अपने-अपने नित्य धामोंमें उपस्थित हुए थे और अवशिष्ट असुर स्वभावके यादव लोग मारे गये थे।

महाभारत युद्धके बाद छत्तीस वर्ष बीत चुके थे। कृष्ण अपने परिकरोंके साथ द्वारकापुरीमें नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हुए सुखसे निवास कर रहे थे। वे अब कालरूपसे ही वहाँ निवास कर रहे थे। अब उन्होंने अपनी लीला संवरण करनेकी इच्छा की। उनकी प्रेरणासे विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ठ, नारद आदि मुनि द्वारकाके समीप पिण्डारक नामक तीर्थ क्षेत्रमें एकत्रित होकर भगवत्-कथाके गुण-गानमें तत्पर हो रहे थे। एक दिन यदुवंशके कुछ उद्दण्ड कुमार खेलते-खेलते उनके समीप जा पहुँचे।

उन्होंने बनावटी नम्रतासे उनके चरणोंमें प्रणामकर उनसे प्रश्न किया। वे जाम्बवतीनन्दन साम्बको स्त्रीके वेशमें ले गये और कहने लगे—"ब्राह्मणो! यह कजरारी आँखोंवाली सुन्दरी गर्भवती है। यह एक बात पूछना चाहती है, परन्तु स्वयं पूछनेमें सकुचाती है। आप लोगोंका ज्ञान अबाध है, आप सर्वज्ञ हैं। इसे पुत्र प्राप्तिकी बड़ी लालसा है, इसके प्रसवका समय भी निकट आ गया है। अतः आप लोग बताइए कि इसे पुत्र पैदा होगा या कन्या?" पहले तो मुनिजन चुपचाप रहे, उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु जब कुमारोंने उन ऋषि-मुनियोंको धोखा देनेके लिए बार-बार

प्रश्न करना आरम्भ किया, तब वे भगवत्-प्रेरणासे क्रोधित हो उठे। उनमें संहारकर्ता महादेव शंकरके अंशभूत महर्षि दुर्वासा अग्रणी थे। उन्होंने कहा—"मूर्खो! यह एक ऐसा मूसल पैदा करेगी, जो तुम्हारे कुलका नाश करनेवाला होगा।" मुनियोंकी बात सुनकर वे बालक बहुत ही डर गये। उन्होंने तुरन्त साम्बका पेट खोलकर देखा तो सचमुच उसमें से एक लोहेका मूसल निकला। वे घबराकर मूसलको लेकर महाराज उग्रसेनके समीप पहुँचे और सारी घटना कह सुनायी। महाराज उग्रसेन और द्वारकावासी अपनी आखोंसे उस मूसलको देखकर विस्मित और भयभीत हो गये, क्योंकि वे जानते थे कि ब्राह्मणोंका शाप कभी झूठा नहीं होता।

महाराज उग्रसेनने उस मूसलको चूर-चूर करा डाला और उस चूरे तथा लोहेके बचे हुए छोटेसे टुकड़ेको समुद्रमें फेंकवा दिया। उस लोहेके टुकड़ेको एक मछली निगल गयी। चूरा तरंगोंके साथ बहकर समुद्रके किनारे आ लगा। थोड़े ही दिनोंमें वे एरक (एक बिना गांठकी घास) के रूपमें उग आये। वह मछली भी मछुओंके जालमें अन्य मछलियोंके साथ पकड़ी गयी। उसके पेटमें जो लोहेका टुकड़ा था, उसको जरा नामक बहेलियेने अपने बाणके नोकमें लगा लिया। भगवान सब कुछ जानते थे। वे इस शापको उलट भी सकते थे, फिर भी कालरूपधारी प्रभुने ब्राह्मणोंके शापका अनुमोदन ही किया।

द्वारकामें बड़े-बड़े उत्पात होने लगे। इन अशकुनोंको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण कुछ बूढ़ोंको द्वारकामें छोड़कर सारे यादवोंको साथमें लेकर पिण्डारक तीर्थमें स्नान और दान-पुण्य करनेके लिए गये। स्नान और दान-पुण्यके पश्चात् भगवत्-प्रेरणासे यादवगण मैरेय नामक मधु पानकर परस्पर लड़ने-भिड़ने लगे। उन्होंने क्रोधवश समुद्र तटपर उगे हुए एरक नामक सरकंडोंको उखाड़कर एक दूसरेका संहार करना आरम्भ कर दिया। यह देखकर बलदेव

प्रभु समुद्र तटपर उपस्थित होकर वहाँसे स्वधाम चले गये। श्रीकृष्ण भी भक्त उद्धव और मैत्रेयजीको उपदेश देकर जरा नामक व्याध द्वारा छोड़े गये बाण लगनेका बहाना बनाकर सपरिकर सशरीर गोलोक वृन्दावनमें पधारे। यदुवंशमें उत्पन्न असुर स्वभाव-सम्पन्न लोग उस कलहमें मारे गये। इस प्रकार पृथ्वीका भार उतारकर कृष्ण स्वधाममें उपस्थित हुए। इस मौषल-संहार-लीलामें दुर्वासा आदि ऋषि केवल निमित्त कारण थे, वास्तवमें भगवत्-इच्छा ही प्रधान थी। महर्षि दुर्वासा श्रीशंकरजीके अवतार अथवा प्रकाश हैं। शंकरजीके ईश्वर होनेके कारण उनका निवास स्थान ईशापुरके नामसे भी प्रसिद्ध है। वर्तमान समयमें दुर्वासा आश्रम ईशापुरमें स्थित है।

श्रीदत्तात्रेयजीका आश्रम

दुर्वासा ऋषिके आश्रमके पास ही यमुनाके तटपर श्रीदत्तात्रेयजीका आश्रम था। दत्तात्रेयजी भगवान् विष्णुके अशांवतार हैं। ये भी अनुसूयाजीके तीन पुत्रोंमें से एक हैं। श्रीमद्भागवतके सप्तम स्कन्धमें इनका नामोल्लेख पाया जाता है। इन्होंने प्रह्लाद महाराजको वर्णाश्रम धर्म तथा तत्वज्ञानका उपदेश दिया था। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें भी इनके चरित्रका वर्णन किया गया है। भगवान् श्रीकृष्णने अपनी अप्रकट लीलासे पूर्व भक्त उद्धवजीको उपदेश देते समय अवधूत दत्तात्रेयजी एवं यदु महाराजके संवादको सुनाया था। इस संवादमें सतयुगमें अवधूत दत्तात्रेयजीने अपने चौबीस शिक्षा गुरुओंका उल्लेखकर महाराज यदुको तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया था। जहाँ दत्तात्रेयजीका आश्रम था, आजकल वह विष्णुपुरके नामसे प्रसिद्ध है। द्वापरमें मल्लाह लोग यहाँपर बस गये और आज भी इस गाँवमें मल्लाहोंकी ही प्रधानता है।

श्रीपराशर मुनि एवं उनका आश्रम

दुर्वासा आश्रमके पास ही पराशर मुनिका आश्रम था, जो कि नाना प्रकारके फल-फूलोंसे युक्त वृक्ष और लताओंसे सुशोभित परम रमणीक था। कालक्रमसे यमुनाके बहाव एवं कटावके कारण वर्तमान कालमें उस आश्रमका कोई चिन्ह नहीं मिलता। फिर भी शास्त्रोंके अनुसार द्वापरके अंत तक कहीं पासमें ही पराशरजीका आश्रम था।

ब्रह्माजीके मानस पुत्र ब्रह्मर्षि वशिष्ठजीके एक पुत्रका नाम शक्ति ऋषि था। पराशरजी शक्ति ऋषिके पुत्र थे। उनकी माताका नाम अदृश्यन्ती था। वशिष्ठजीने ही स्वयं अपने पौत्रका सब प्रकारसे पालन-पोषण किया था। उनका सारा संस्कार पितामह वशिष्ठजीने ही करवाया था।

धर्मात्मा पराशर वशिष्ठजीको ही अपना पिता मानते थे और जन्मसे ही उनके प्रति पितृभाव रखते थे। जब उन्होंने अपनी मातासे यह सुना कि बेटे! वशिष्ठजी तुम्हारे पिता नहीं, बल्कि पिताके भी पिता हैं। तुम्हारे पिताको तो वनके भीतर राक्षस खा गये थे, तब ऐसा सुनकर पराशरजी दुःखसे आतुर हो उठे। उन्होंने तपस्याके द्वारा सब लोकोंको नष्ट कर डालनेका विचार किया, किन्तु वशिष्ठजीने तत्त्वज्ञान देकर उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया।

पराशरजी बहुत बड़े तपस्वी एवं परम भक्त थे। समाजके कल्याणके लिए उनके द्वारा लिखित पराशर स्मृति, अठारह स्मृतियोंमें से एक प्रमुख स्मृति है, जिसके द्वारा आज भी भारतीय हिन्दू समाज संचालित होता है।

एक समय पराशर मुनि तीर्थयात्रा करते हुए यमुनाके किनारे उपस्थित हुए और यमुना पारकर अपने आश्रममें जाना चाहते थे। शाम हो चुकी थी। उन्होंने देखा कि एक कुमारी नौका द्वारा

लोगोंको आर-पार ले जाती है। पराशरजी अकेले ही थे। वे उसकी नौकामें चढ़कर यमुनाको पार करने लगे।

वह नौका चलानेवाली युवती और कोई नहीं मत्स्यगंधा थी। मत्स्यगंधा उपरिचर वसुके वीर्य द्वारा ब्रह्माजीके शापसे मछली रूपको प्राप्त हुई अद्रिका नामक अप्सराके गर्भसे उत्पन्न हुई थी। मल्लाहोंने मछलीके पेटसे इसे प्राप्त किया था। इसीलिए इसका नाम मत्स्यगंधा था। मल्लाहोंके सरदारने इसे अपनी बेटी मानकर इसका पालन-पोषण किया था। यह परम सुन्दरी थी। सत्य एवं नाना प्रकारके सद्गुणोंसे सम्पन्न होनेके कारण यह सत्यवतीके नामसे प्रसिद्ध हुई। पिताकी सेवाके लिए यमुनाजीमें नाव चलाया करती थी। पराशर मुनि उसके मनमोहक रूप-सोन्दर्यको देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने उसके साथ समागमकी इच्छा प्रकट की, परन्तु शील स्वभाव और सदाचार-सम्पन्ना मत्स्यगंधाने सरल हृदयसे कहा—"पूज्य! कन्याभाव दूषित होनेपर मैं कैसे अपने घर जा सकती हूँ। मुनिवर! मैं कलंकित होनेपर जीवित रहना नहीं चाहती।"

मत्स्यगंधाके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ पराशरजीने कहा कि तुम जो चाहो मुझसे वर ले लो। पुत्र होनेपर भी तुम्हारा कन्यापन बना रहेगा। तुम्हारे अंगोसे मछलीकी गन्ध दूर हो जाएगी तथा उसके बदले तुम्हारे अंगोसे उत्तम सुगन्ध निकलेगी जो एक योजन तक भूमण्डलपर फैलती रहेगी। तुम्हारे गर्भसे भगवानका अंश जन्म ग्रहण करेगा, यह जो कुछ हुआ भगवानकी इच्छासे ही हुआ। ऐसा कहते ही पराशरजीके दिव्य तेजसे उसे गर्भ रहा और साथ-ही-साथ एक महदद्भुत शिशुका जन्म हुआ। देखते-देखते वह सोलह वर्षकी युवावस्थाको प्राप्त हो गया। ये पराशरनन्दन बादमें कृष्णद्वैपायन वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध हुए। ये यमुनाके द्वीपमें जन्म होनेके कारण 'द्वैपायन' और वेदोंका विभाग करनेके कारण

वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध हुए। पराशरनन्दन व्यासदेवने माता सत्यवतीको यह आश्वासन दिया—"जब कभी भी आप मुझे आह्वान करेंगी, मैं तुरंत आपके निकट आकर आपकी अभिलाषाको पूर्ण करूँगा।" ऐसा कहकर वे यमुनाके द्वीपसे तपस्याके लिए कहीं अन्यत्र चले गये।

तदनन्तर सत्यवती भी प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट गयी। उसके पिता दाशराज भी उस दिनसे उसकी उत्तमगंधको सूंघकर बहुत प्रसन्न हुए।

कहते हैं, व्यासजीने मथुरामें यमुनाके कृष्णगंगा नामक घाटपर स्थित अपने आश्रममें रहकर श्रीमद्‌भागवत जैसे रसपूर्ण 'अमल महापुराणको समाधिमें प्राप्तकर जगतके कल्याणके लिए यहींपर प्रकाश किया। इसका कारण यह है कि व्रजमें वास किए बिना अथवा स्वयं-भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण एवं उनकी स्वरूप-शक्ति श्रीराधिकाजीकी आराधना और कृपाके बिना ऐसा अनुपम ग्रन्थ प्रकाश करना असंभव है। अतः यमुनाके किनारे कहीं निकटमें व्यासदेवजीका भी आश्रम अवश्य ही रहा होगा। व्यासजीका आश्रम कृष्णगंगा घाटके समीप ही रहा होगा, जहाँसे चक्रतीर्थ एवं अम्बरीष महाराजजीका टीला निकट ही है।

ऐसा सम्भव है कि मत्स्यगंधाका पालन-पोषण करनेवाले मल्लाहोंके सरदार दासराज भी वर्तमान विष्णुपुरीमें ही निवास करते थे और सत्यवती वहीं अपने पिताके घर रहती थी। अतएव महर्षि दुर्वासाजीका आश्रम और उसके निकट भगवान दत्तात्रेयका आश्रम, महर्षि पराशर एवं श्रीवेदव्यासजीके आश्रम पास-पास ही थे। अतः यह स्थान ऐतिहासिक, पौराणिक एवं कृष्णकी लीला-स्थली—सभी दृष्टिकोणसे बहुत ही महत्वपूर्ण है।